ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBBIL/2014/66218 PP. NO.- 83-86
ISSN NO.-2347-2944
Vol.-10, No.-I, Issues-11 YEAR- June -2019

पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी के मानवतावादी विचार

महेश कुमार सिंह

शोध अध्येता, राजनीति विज्ञान विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर (उ0प्र0) भारत

Received- 30.04.2019, Revised- 06.05.2019, Accepted - 10.05.2019 E-mail: ambujesh1981@gmail.com

सारांश : *प्रस्तुत शोध पत्र का मूल उद्देश्य 'पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी के मानवतावादी विचार' का विशद् विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना है। वस्तुतः पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी की भूमिका तत्वद्रश्टा की रही है। उनके मानवतावादी दृष्टिकोण तक पहुँचने हेतु राजनीतिक दृष्टिमार्ग सम्भव व उपयुक्त नहीं है। मानवतावाद की कल्पना कहने को तो बड़ी सरल संकल्पना है, किन्तु एक नितांत स्वार्थी व्यक्ति भी 'ब्रह्म सत्यमं जगन्मिथ्या' की आदर्श भाषा बोल सकता हे। अतः आधुनिक जगत में मानवता के सही लक्ष्य की ओर प्रस्थान नितांत कठिन हो गया है। इस सन्दर्भ में दी मैस्त्रे का यह कथन समीचीन प्रतीत होता है, ''अपने जीवन काल में मैने फ्रांसीसी, इटालवी और रूसी लोग देखे हैं माण्टेस्क्यू की कृपा से मैं यह भी समझ पाया हूँ कि कोई व्यक्ति प्रशियन भी हो सकता है। किन्तु जहाँ तक 'मानव' का सम्बन्ध है, मैं प्रकट रूप से बताता हूँ कि अपने जीवन में मेरी उससे भेंट कहीं नही हुई। यदि वह कही अस्तित्व में होगा भी, तो उसकी मुझे कोई जानकारी नहीं है।''1 ठीक इसी प्रकार एक अन्य विचारक ग्रिल पार्ज़र का भी यही दृष्टिकोण परिलक्षित होता है कि, "आधुनिक संस्कृति का मार्ग मानवता से राष्ट्रीयता की ओर होता हुआ पशुता की ओर जाता है।''2 अतेव इस वातावरण में मानवतावाद का पक्षधर बनना तो एक अत्यन्त साहसिक कार्य ही है।*

कुंजी शब्द – मानवतावादी, मानवतावाद, मानवता, कल्याण, संकल्पना, प्रस्थान, नितांत।

ऐतिहासिक रूप में पाश्चात्य मानवतावाद का दार्शनिक एवं साहित्यिक पुनर्जागरण 14वीं सदी के उत्तरार्द्ध में इटली में प्रारम्भ हुआ। 15वीं एवं 16वीं सदी में यह यूरोप के अन्य देशों में भी प्रसरित हुआ। 18वीं सदी तक आते आते मानवतावाद ने यूरोप के विभिन्न देशों पर अपना पर्याप्त प्रभाव स्थापित करने में सफल रहा। जिसे आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति के एक प्रमुख अंग के रूप में प्रमुखता प्राप्त हुई। तात्विक ज्ञान की दृष्टि से पाश्चात्य मानवतावाद 'स्वभाववाद' से बिल्कुल अलग था। जिसका एक कारण वह समस्त सृष्टि में मानव जीवन की श्रेष्ठता को प्रमुख मानता था तो दूसरी ओर वह अव्यक्त तत्वों एवं कल्पना से मानव जीवन के प्रत्यक्ष आनुभविक श्रेष्ठताओं को भी महत्व प्रदान करना था।''3

साहित्यिक आन्दोलन के कारण पाश्चात्य मानवतावाद इटली के पुनर्जागरण का ही प्रासंगिक रूप था। वस्तुतः प्राचीन यूनान एवं रोम की भावनाएं ही इस मानवतावाद में परिलक्षित हुई। जिसने मध्ययुगीन ईसाइयत विचारधारा एवं उसके ईश्वरीय सत्ता को चुनौती दी, जिसकी जड़े प्राचीन यूनानी प्रणाली में विद्यमान थी। प्रोटेगोरस का यह प्रसिद्ध उक्ति इस मानवतावाद हेतु आधारभूत स्थिति प्रदत्त था "मनुष्य सब मनुष्यों का जो है उनके होने का और जो नहीं है उनके न होने का मापदण्ड है।''4

वस्तुतः यूरोप में विभिन्न मानवतावादी विचारधाराओं का प्रचलन था। जिसमें परम्परागत या शास्त्रीय विचारधाराओं के अन्तर्गत पृथ्वी को सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का एवं मानव को इसे पृथ्वी का सर्वश्रेष्ठ गौरवपूर्ण एवं विवेकशील प्राणी माना गया। पुनर्जागरण के पश्चात भी विद्वान प्राचीन यूनान की अवधारणा को ही अपना आदर्श मानते हुए मानव की विवेकशीलता में अपनी आस्था प्रकट की। इस प्रकार सदियों से मानव की विवेकशीलता में उनकी आस्था बनी रही जो परम्परागत होने के साथ ही साथ मानव को समस्त क्रियाकलापों का केन्द्र मानता है। इस अवधारणा के प्रतिक्रिया स्वरूप लगभग दो शताब्दी पश्चात एक नई अवधारणा 'मानवीय समानता' के साथ कार्ल मार्क्स का अभ्युदेय हुआ। जिससे मानवतावाद के एक अलग स्वरूप का अस्तित्व परिलक्षित हुआ। जिसने सामान्य एवं निर्धन मनुष्यों को धनी एवं शक्तिशाली लोगों के बंधन से मुक्त करने की कोशिश की तथा उनकी आर्थिक सुरक्षा पर बल दिया। इस प्रकार प्राचीन एवं परम्परागत मानवतावाद के नैतिक एवं बुद्धिवादी दबाव को समाप्त कर व्यक्ति की स्वतंत्रता एंव अधिकार की प्रमुखता का मार्ग कार्ल मार्क्स ने प्रशस्त किया, किन्तु इसमें समाज के एक वर्ग विशेष के हितों की प्रमुखता के कारण यह नितांत एक पक्षीय एवं एकांगी प्रतीत हुआ। कार्ल मार्क्स के इस विचार की प्रतिक्रिया स्वरूप 20वीं सदी में अस्तित्ववादी मानवतावादी विचारों का अभ्युदय हुआ, जिसने मनुष्य को अपने भाग्य का विधता स्वयं माना। यह मानवतावादी अवधारणा मूलतः कर्मप्राधान्य थी जिसने मानव को मानवीय मूल्यों के महत्व से परिचित कराके एक

अनुरूपी लेखक

नवीन अनुभव से अवगत कराते हुए थोपी गयी परम्परागत या मार्क्सवादी मानवतावादी विचारों से मानव को मुक्त कराया।

अपने अन्तिम स्वरूप में स्कोलिमोवस्की प्रणीत पर्यावरणात्मक मानवतावाद का अभ्युदय हुआ, जिसने मानव को प्रकृति के साथ विशेष छेड़छाड़ या खिलवाड़ न करने की चेतावनी दी।''5 वस्तुतः यह अवधारणा अभी प्राथमिक चरणों में ही है, परन्तु इसकी अनिवार्यता की अनुभूति वर्तमान विश्व में पूर्व की अपेक्षा अधिक सतर्कता के साथ की जा सकती है। पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी ने भी ऐसी स्थिति में सचेत करते हुए कहा था कि ''प्रकृति की सम्पदा अपार होते हुए भी उसकी मर्यादा है।''6 पुन उन्होंने कहा है कि "प्रकृति की सम्पदा की मर्यादा की चिन्ता न भी करें तो कम से कम इतना तो अवश्य ही मानना पड़ेगा कि प्रकृति में विभिन्न वस्तुओं के बीच एक परावलम्बी सम्बन्ध है। आज की अर्थव्यवस्था और उत्पादन की पद्धति इस सामन्जस्य को तीव्र गति से विगाड़ती जा रही है, परिणामतः जहाँ एक ओर हम नयी–नयी इच्छाओं की पूर्ति के लिए नये–नये साधन ढूँढ रहे हैं वहीं दूसरी ओर नये–नये प्रश्न हमारी सम्पूर्ण सभ्यता और मानवता को समाप्त करने के लिए पैदा होते जा रहे है। हम प्रकृति से उतना ही तथा इस प्रकार ले कि वह उस कमी को स्वयं पुनः पुरित कर लें।''7

एक उदाहरण से तथ्य को समझाते हुए उपाध्याय जी ने लिखा है कि, "पेड़ से अधिक फल लेने में हानि नहीं, लाभ होता है, पर भूमि से अधिक फसल लेने के लोभ में हम ऐसे उर्वरको का प्रयोग कर रहे है जिनसे कुछ दिनो बाद उसकी उत्पादन शक्ति समाप्त हो जाती है। आज अमेरिका में लाखों एकड़ भूमि इस प्रकार की खेती के कारण ऊसर हो चुकी है।''8 पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी ने 'प्रकृति' के साथ मातृवत व्यवहार करने का निर्देश दिया तथा उपभोग में 'सयंम' के नियम का पालन करने का आग्रह भी किया है।''9

पं0 दीनदयाल उपाध्याय को इस क्रमिक सन्दर्भ मं यह विचार व्यक्त किया कि, "सोद्देश्य, सुखी व विकासमान जीवन के लिए जिन भौतिक साधनों की आवश्यकता है, वे अवश्य ही प्राप्त होने चाहिए। भगवान की सृष्टि का अध्ययन करें तो यह पता चलेगा कि उतनी व्यवस्था उसने की है। किन्तु जब हम यह समझकर कि भगवान ने मनुष्य को केवल उपभोग प्रवण प्राणी बनाया है, उसके अंधाधुंध उपयोग के लिए ही अपनी सम्पूर्ण शक्ति खर्च करे, तो ठीक नहीं। मानव जीवन के उद्देश्य का विचार करके हमें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए जिससे वह न्यूनतम ईधन से अधिकतम् गति के साथ अपने लक्ष्य की ओर बढ़ सके तो यह अर्थव्यवस्था मानवीय होगी। यह मानव के एक पहलू का विचार न करके उसके सम्पूर्ण जीवन का तथा अन्तिम उद्देश्य का विचार करेगी। यह संहारात्मक न होकर सृजनात्मक होगी। यह प्रकृति के शोषण पर निर्भर न रहकर उसके पोषण पर निर्भर रहेगी। शोषण नहीं दोहन हमारा आधार होना चाहिए। प्रकृति का स्तन्य हमारे लिए जीवनदायी हो, यह व्यवस्था करनी चाहिए।''10 पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी का यह मानवतावादी दृष्टिकोण पाश्चात्य मानवतावाद से भिन्न किन्तु श्रेष्ठ प्रतीत होता है। क्योंकि यह मानवतावादी अवधारणां विशुद्ध भौतिकवादी नीवं पर आधारित होने के कारण मानवतावाद के वास्तविक स्वरूप तक नहीं पहुँच सकती। इस प्रकार पाश्चात्य जगत की विफलताओं की पृष्ठिभूमि में पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी की मौलिक 'विचार दृष्टि' की श्रेष्ठता स्वयं सिद्ध होती है।

वस्तुतः 'मानवतावाद' वह विश्वास है जो किसी कार्य की सफलता का अनुमान उसके द्वारा मानवीय कष्टों एवं पीड़ाओं को कम करने में प्राप्त सफलता के आधार पर करता है। महर्षि वेदव्यास का यह कथन सत्य प्रतीत होता है कि "परोपकार" ही धर्म है और 'पर पीड़ा' पाप है, मानवतावाद का सारतत्व है।''11 इस प्रकार मानवतावादी समस्त सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक नीतियों की सफलता का अनुमान उनके द्वारा मानव कल्याण के कार्य के आधार पर करते है, जिसमें मानव सेवा ही सर्वोच्च नीतिगत धर्म बन जाता है। समस्त मानवजाति के हित की आवश्यकता और उसकी उपयोगिता मानवतावाद का लक्ष्य बन गया है। जिसमें वह मानव को सदैव श्रेष्ठ स्वीकार करता है। इसी सन्दर्भ में डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन जी का कहना है कि, "मानवतावाद यह मानकर भी चलता है कि मनुष्य प्रकृत्यः अच्छा होता है। जो बुराईयाँ है, वे समाज की है, उन परिस्थितियों में निहित है जिनसे मानव घिरा है। यदि वे दूर कर दी जाय तो मानव की अच्छाई बाहर आ जायेगी और प्रगति सहजलभ्य होगी।''12

यद्यपि पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी यह विचार व्यक्त तो करते है कि हम भारतीय चिंतन की परम्परा को विकसित करें कि वह आधुनिक विश्व विचार परम्परा का एक सार्थक हिस्सा बन सके, परन्तु उनका प्रखर राष्ट्रवादी एवं हिन्दुत्ववादी दृष्टिकोण उनको वैश्विक विचार परम्परा के साथ एक रस होने से रोकता है। जहाँ उनका विवेक उन्हें मानवता की एकात्मकता की ओर उन्मुख करता है वहीं उनका राष्ट्रवाद उन्हें भारतीय सांस्कृतिक परम्पराओं के मण्डन एवं पाश्चात्य परम्परा का खण्डन हेतु प्रेरित करता है।''13 इस प्रकार पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी के मानवतावाद का ज्ञान हमें पाश्चात्य एवं भारतीय दृष्टिकोण

ISSN NO.-2347-2944
Vol.-10, No.-I, Issues-11 YEAR- June -2019

की तार्किक विश्लेषण के आधार पर प्राप्त होंता है। पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी ने पाश्चात्य मानवतावादी विचारों का विरोध न कर उसे भारतीय मूल्यों के साथ समन्वित करते हुए एक नवीन विचार दर्शन के सृजन का अभिष्ट सदैव अपने अन्तःकरण में सजोया हुआ था।

पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी ने एक ऐतिहासिक भाषण के समापन अवसर पर वैश्विक मानवतावादी दृष्टिकोण को उद्घृत किया है, "विश्व के ज्ञान और आज तक की अपनी सम्पूर्ण परम्परा के आधार पर हम ऐसे भारत का निर्माण करेंगे जो हमारे पूर्वजों के भारत से भी अधिक गौरवशाली होगा, जिसमें जन्मा मानव अपने व्यक्तित्व का विकास करता हुआ, सम्पूर्ण मानवता ही नहीं अपितु सृष्टि के साथ एकात्मकता का साक्षात्कार कर 'नर में नारायण' बनने में समर्थ हो सकेगा। यह हमारी संस्कृति का शाश्वत्, दैवी और प्रवहमान रूप है। चौराहे पर खड़े विश्व मानव के लिए यही हमारा दिग्दर्शन है। भगवान हमें शक्ति दें कि हम इस कार्य में सफल हों, यही प्रार्थना है।''14

इस प्रकार पं0 दीनदयाल उपाध्याय के मानवतावादी विचारों के सार स्वरूप में कहा जा सकता है कि "हमारी सम्पूर्ण व्यवस्था का केन्द्र 'मानव' होना चाहिए। जो 'यत पिण्डे तत ब्रह्माण्डे' के न्याय के अनुसार समष्टि का जीनमान प्रतिनिधि एवं उसका उपकरण है। भौतिक उपकरण मानव के सुख के साधन है, साध्य नहीं। जिस व्यवस्था में भिन्न रूचि लोक का विचार केवल एक औसत मानव अथवा शरीर, मन, बुद्धि व आत्मायुक्त अनेक ऐषणाओं से प्रेरित पुरूषार्थ चातुष्ट्यशील पूर्ण मानव के स्थान पर एकांकी मानव का ही विचार किया जाए, वह अधुरी है। हमारी आधार एकात्म मानव है जो एकात्म समष्टियों का एक साथ प्रतिनिधित्व करने की क्षमता रखता है। एकात्म मानववाद के आधार पर हमें जीवन की सभी व्यवस्थाओं का विकास करना होगा।''15

पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी का मानना है कि आज विश्व के समस्त झंझावातों से हमें सुरक्षा प्रदान करने वाला कोई नया वाद नहीं है, आप इसे किसी भी नाम से पुकारिये हिन्दुत्ववाद, मानवतावाद या कोई नया वाद किन्तु यही एकमेव मार्ग भारत की आत्मानुरूप होगा जो जनता में नवीन उत्साह संचारित कर सकेगा।''16 साथ ही यह अद्यतन वैज्ञानिक उन्नति का भी विरोधी नहीं है, वरन् विज्ञान व यंत्र का उपयोग इस विधि से होना चाहिए कि वे हमारे सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन पद्धति के अनुरूप हो।

वीर सावरकर के विचारों को उद्घृत करते हुए पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी ने यह कहा है कि "हमें अपना ध्यये समझकर इस बात को निश्चित रूप से विघोषित कर देना चाहिए कि कल का हिन्दुस्तान कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक और सिन्धु से लेकर आसाम तक केवल संयुक्त होने के नाते नहीं अपितु अभिन्न राष्ट्र के नाते से एकरस एवं अविभाज्य ही रहना चाहिए। .....जो कोई भी व्यक्ति सिन्धु से समुद्र तक फैली हुई इस भारत भूमि को अपनी पूण्य भू मानता है, वह यह बात कह सकता है, वह प्रत्येक व्यक्ति 'हिन्दू' है। हिन्दू जगत का ध्वज अत्युच्च हिमालय के उतुंग शिखरों पर ऊँचा फहरा रहा है और अब हिन्दुस्तान पुनः स्वाधीन तथा जगत विजयशाली बन गया है।''17

निष्कर्षतः पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी का पराक्रमवादी सांस्कृतिक, राष्ट्रवाद जो कि हिन्दू राष्ट्रवाद है, राष्ट्र एवं मानवता के उत्थानों हेतु समसामयिक प्रश्नों को आत्मसात करते हुए समाधान का मार्ग प्रशस्त करता है। वर्तमान में उसकी प्रासंगिकता पूर्व की अपेक्षा और अधिक गम्भीरतापूर्वक अनुभव किया जा सकता है। वर्तमान समय में विश्व के समक्ष मानव के अस्तित्व की रक्षा का प्रश्न सर्वोपरि रूप में उनके चिंतन का महत्वपूर्ण प्रश्न था जिसकी अत्यन्त गम्भीरता व व्यापक दृष्टि से विचार करने की आवश्यकता है। वर्तमान विश्व में प्रचलित लोककल्याणकारी दृष्टिकोण जो व्यक्ति की 'स्वतंत्रता, समानता व भ्रातृत्व' के आकर्षपूर्ण नारे पर आधारित अवस्था प्रजातंत्रवादी न होकर उसके विकृत रूप पूंजीवाद की ही अवस्था है जो विश्व मानवता का अधिकतम् हित न कर अधिकतम् अहित ही किया है। क्योंकि इसने मानव जीवन के सर्वांगीण विकास का विचार विभिन्न टुकड़ो में किया है। जिससे उसके वास्तविक समस्या का न तो पहचान हो पाया न ही निदान। इस प्रकार पं0 दीनदयाल उपाध्याय चिंतन में मानवता के समग्र व संकलित स्वरूप को अमिहित करते हुए राष्ट्र को दुःख मुक्त और बल समृद्धि व सुख युक्त बनाकर भारतीय संस्कृति की रक्षा व गतिमान बनाते हुए ऐसे भारत का नूतन निर्माण करना चाहते थे, जो पूर्वजों के भारत से भी गौरवशाली हो और यहाँ की जन्मी प्रत्येक संतति अपने व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करते हुए सम्पूर्ण मानवता के साथ ही नहीं अपितु सम्पूर्ण सृष्टि से परमेष्टि के साथ एकात्मता को आत्मसात् करता हुआ 'नर से नारायण' बनने हेतु समर्थ हो।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पं0 दीनदयाल उपाध्यायः विचार दर्शन, तत्व जिज्ञासा, दत्तोपत ढंगड़ी, सुरूचि प्रकाशन, 2014, पृ0–111
2. वही, पृ0–112

ISSN NO.-2347-2944
Vol.-10, No.-I, Issues-11 YEAR- June -2019

3. वही, पृ0–112
4. वही, पृ0–112
5. डॉ0 विनोद चन्द पाठकः पं0 दीनदयाल उपाध्याय का राजनीतिक चिंतन, सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2009, पृ0–100
6. डा0 महेश चन्द्र शर्मा, पं0 दीनदयाल उपाध्याय : कर्तृत्व एवं विचार, प्रभात पेपर बैक्स, नई दिल्ली, 2015, पृ0–380
7. पं0 दीनदयाल उपाध्यायः एकात्म मानव दर्शन, सुरूचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991, पृ0–60–61
8. पं0 दीनदयाल उपाध्यायः एकात्म मानव दर्शन, सुरूचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991, पृ0–61
9. डा0 महेश चन्द्र शर्मा पं0 दीनदयाल उपाध्याय : कर्तृत्व एवं विचार प्रभात पेपर बैक्स नई दिल्ली, 2015, पृ0–380
10. वही, पृ0–61
11. डॉ0 विनोद चन्द पाठकः पं0 दीनदयाल उपाध्याय का राजनीतिक चिंतन, सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2009, पृ0–96
12. डा0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन, एन आइडियलिस्टिक व्यू ऑफ लाइफ, पृ0–35
13. वही, पृ0–104
14. दीनदयाल उपाध्यायः एकात्म मानव दर्शन, सुरूचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ0–75–76
15. भारतीय जनसंघ, घोषणाएं एवं प्रस्ताव, भाग–1, सिद्धान्त एवं नीतियाँ, नई दिल्ली, पृ0–12
16. दीनदयाल उपाध्यायः राष्ट्र चिंतन, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ, सितम्बर 2014, पृ0–66
17. युगद्रष्टाः दीनदयाल उपाध्याय, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ, सितम्बर 2014, पृ0 –72–73

*****